

○.....
 समय की मांग एवं प्रगतिशील विचारों के दबाव से कानूनी ढांचे में तो परिवर्तन हुये हैं, लेकिन सामाजिक सन्दर्भों में परिवर्तन अपेक्षाकृत नहीं हुआ है। ये गति और भी धीमी हो जाती है जबकि सामाजिक वैचारिकी में परिवर्तन के प्रयास सघन न हों। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के चाहे कितने ही दावे किये जाएं, वास्तविकता ये है कि ग्रामीण एवं पिछड़े तबकों में स्थिति अभी भी चिन्ताजनक बनी हुई है। बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए ठोस व्यावहारिक योजनाएं बनानी होंगी। यह समता पूर्ण एवं न्याय सम्मत समाज की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। प्रस्तुत लेख शिक्षा एवं समाज में बालिकाओं की स्थिति का आँकलन करता है।
 ○.....

प्राथमिक शिक्षा में लड़कियां

□ डॉ. सौभाग्यवती

एक लम्बे अर्से के संघर्ष के बाद सबके लिए शिक्षा के मुद्दे पर 93 वां संविधान संशोधन 28 नवम्बर, 2001 को संसद में पारित हो गया। संसद द्वारा स्वीकृत इस संशोधन में कहा गया है,

‘6 से 14 वर्ष’ की आयु के सभी बच्चों के लिए राज्य मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा मुहैया करायेगा। ऐसे तरीके से जैसा कि कानून के जरिये राज्य तय करे।

पहली नजर में यह एक क्रान्तिकारी बदलाव का सूचक कदम जान पड़ता है लेकिन इसमें सवाल यह है कि हमारी समाज व्यवस्था में जो घोर विषमता व्याप्त है उसके रहते भविष्य में क्या सबको समान अवसर मिल सकेंगे? लड़कियों की शिक्षा के संदर्भ में तो यह सवाल और अहम् हो जाता है। जैसा कि सब जानते हैं हमारे भारतीय समाज में लड़के की अपेक्षा लड़की को कमतर माना जाता है। शुरू से ही उसकी खुराक, पालन-पोषण, चिकित्सा और सभी तरह की सुख-सुविधाओं में लापरवाही बरती जाती है। हजारों सालों से पितृसत्तात्मक समाज में एक बेटा वंश चालक और पैतृक उत्तराधिकारी बनकर माता-पिता को नरक से तारने वाला माना जाता है, जबकि लड़की पराये घर का धन होती है। उसकी शिक्षा और हुनर का जो कौशल होता है वह दूसरे के घर ही काम आता है। अतः उस पर अधिक खर्च करना उचित नहीं माना जाता। प्रथम और अन्तिम उद्देश्य एक लड़की की शादी ही माना जाता है। फिर आधुनिक पूंजीवादी समाज में दहेज की समस्या भी घर वालों की चिन्ता का विषय बन जाती है। ऐसी स्थिति में घरेलू काम-काज में लड़की निपुण बने, यही उसके लिए हितकर है। शिक्षित और कम शिक्षित घरों में भी यह धारणा एक लड़की के प्रति आमतौर

से बनी रहती है कि जो लड़की विवाहोत्तर जीवन में पति की आज्ञाकारी और बच्चों के पालन-पोषण में निपुण माँ होती है वही गृहस्थ की भूमिका श्रेष्ठ तरीके से निभा सकती है, भले ही उसे अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को भुलाकर सफल पत्नी और योग्य माँ बनने के लिए कितनी भी परेशानियों को आत्मसात क्यों न करना पड़े।

वर्तमान में शहरी जीवन में बालिकाएं पढ़-लिख कर सामाजिक जीवन की सभी गतिविधियों में भागीदारी कर रही हैं। नारी मुक्ति और नारी समानता के दावे भी बढ़-चढ़कर जोर-शोर से किये जा रहे हैं, लेकिन जहां कहीं कोई नारी पुरुष के सामानान्तर स्थिति में खड़ी दिखाई देती है, पुरुष समाज को यह रुचिकर नहीं प्रतीत होता। आजादी के छप्पन वर्ष बाद भी लैंगिक भेदभाव की संकीर्ण मानसिकता खत्म होने के बजाय अधिक उग्र दिखाई देती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा की स्थिति और भी शोचनीय है। बेसिक शिक्षा विभाग की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार 1991 में देश में नारी साक्षरता 39.29% थी तथा निचले तबकों में यह 10% थी। 1992 में लड़कियों का प्राइमरी कक्षा में नामांकन 43% था। 1993 में 39 प्रतिशत लड़कियां प्राइमरी के बाद हटा ली गईं। शेष आधी से ज्यादा 57% उच्च प्राइमरी में जाने से पहले ही स्कूल छोड़ गईं। पिछड़े क्षेत्रों में लड़कियों के प्रति उदासीनता का परिणाम यह है कि साल दर साल प्राथमिक शिक्षा में लड़कियों का नामांकन के उच्चतर होने के साथ ही स्कूल छोड़ने लगती हैं।

1981 की जनगणना के मुताबिक प्रत्येक 1000 पुरुषों के

मुकाबले महिलाओं की संख्या 927 ही रह गई। यह स्थिति बताती है कि हम विकास और प्रगति की बातें तो करते हैं किन्तु महिलाओं को अपने बराबर आते देखकर उन्हें बर्दाश्त नहीं कर पाते।

वर्तमान में अमर्त्य सेन की भारतीय शिक्षा के प्रति जिस तरह संवेदनशील लेकिन गंभीर सोच सामने आयी है और खास तौर से दक्षिण एशिया के विकासशील देशों ने उसकी हकीकत को समझा है तब से सभी विकासशील देश सावधान सचेत होकर बुनियादी शिक्षा के उपक्रमों पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। कहना न हो होगा कि भारत भी सेन द्वारा प्रतिपादित शिक्षा में व्यक्तिगत भूमिका और सामाजिक भूमिका के सूत्रों को हृदयंगम करके स्वस्थ शिक्षित समाज बनाने में दिलचस्पी ले रहा है। हमसे एक भूल यह हो गई कि हमने कोकाकोला, कारों के नूतन मॉडल और सुपर फास्ट रेल आदि के मुद्दों पर जितना समय और धन जाया किया उससे आधा समय और रकम भी शिक्षा और पानी जैसे बुनियादी मुद्दों पर व्यय नहीं की। यदि ऐसा कर पाते तो हमारी प्राथमिक शिक्षा की दरिद्रता खासतौर से लड़कियों के परिप्रेक्ष्य में आज जैसी शर्मनाक स्थिति में नहीं पहुंचती। ऐसा नहीं है कि राज्य और केन्द्र सरकारों ने बालिका शिक्षा की योजनाएं या कार्यक्रम लागू नहीं किए। 1986 की नई शिक्षा नीति की कार्यवाही योजना में महिला समानता के लिए शिक्षा पर बहुत बल दिया गया। इस दस्तावेज में एक सर्वेक्षण के हवाले से कहा गया है कि गांवों में कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली 100 लड़कियों में से मात्र एक लड़की 12 वीं कक्षा तक पहुंच पाती है। जबकि शहरों में 14 लड़कियां 12 वीं तक पहुंचती हैं। तात्पर्य यह है कि तकनीकी और रोजगारपरक शिक्षा की सुविधाएं शहरों और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में ही सीमित हैं। ऐसे में लड़कियों की शिक्षा में गांवों से सहभागिता नहीं हो पाती और लैंगिक अनुपात जस का तस बना रहता है।

इन तथ्यों को नजरन्दाज करके यदि बालिकाओं को शिक्षा में शामिल किये जाने के प्रयास नहीं किये जाते तो प्रारंभिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण संभव नहीं हो सकता। याद रहे, गांव की लड़कियां दो तरह से घाटे में रहती हैं। एक तो उन्हें शैक्षिक अवसर सुलभ नहीं होते, दूसरे उन्हें घर में भाई-बहनों की देखभाल, पशुओं को चारापानी आदि काम भी करने पड़ते हैं। यही कारण है कि प्राइमरी शिक्षा में आने वाली लड़कियां बताती हैं कि उच्च शिक्षा की मंजिल उनके लिए आसमान छूने जैसी है।

यह एक सुखद स्थिति है कि अब सभी राज्यों में 8वीं कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा के साथ कई अन्य सहूलियतें बहाल की गई हैं। 1995-96 में शुरू की गई दोपहर भोजन-योजना अत्यन्त लाभकारी और दूरगामी सुपरिणाम देने वाली सिद्ध हो रही है।

उदाहरणस्वरूप राजस्थान के सीकर जिले के 26 गांवों में किये गए एक सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य सामने आया कि सभी स्कूलों में पिछले साल के मुकाबले अगले साल अधिक दाखिले हुए। कुछ वंचित क्षेत्रों में स्थित वैकल्पिक स्कूलों में दोपहर की भोजन योजना लागू होने के बाद बच्चों की संख्या लगभग दुगुनी हो गई। यह योजना लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में मील का पत्थर साबित हुई है। इन योजनाओं को सभी राज्यों में शामिल किया जाना चाहिए। भूख को जारी रखने का कोई औचित्य भी नहीं है। यही नहीं दलित रसोइयों द्वारा भोजन पकाने का सवाल उठाया गया लेकिन हमें इस स्थिति को चुनौती मानते हुए सभी बच्चों को एक साथ मिलकर भोजन करने की प्रक्रिया को सांस्कृतिक एकरूपता की दृष्टि से देखना चाहिए। दरअसल ब्राह्मणवादी लोग इस योजना की उपलब्धियों की अपेक्षा जातीय सवाल और दूषित भोजन की चटपटी खबरें कुछ अतिरंजना के साथ उछाल रहे हैं। यह समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हमारे देश के स्कूलों की कक्षाओं में व्यवधान का एक सबसे बड़ा कारण दोपहर के भोजन का अभाव है। जब दिन का भोजन करने के लिए बच्चे घर चले जाते हैं तो अधिकतर उनमें से लौटकर ही नहीं आते। इस योजना को सभी राज्यों में फैला देने से कक्षा में भूख का एक बहुत बड़ा सवाल हल हो सकता है। इतना जरूर होना चाहिए कि समुचित ढांचागत सुविधाएं और स्वच्छता पर ध्यान दिया जाए।

यह अत्यन्त चिन्ता की बात है कि ज्यादातर राज्य सरकारें खजाना खाली होने के बहाने इस योजना को खत्म कराने पर आमादा हैं। क्या विधायकों या सांसदों के भत्तों को बढ़ाने से, राजनेताओं और पदाधिकारियों के तामझाम भरे स्वागत समारोहों से तथा सरकारी महकमों में चाय और अल्पाहार पर लाखों रुपये खर्च कर देने से वित्तीय घाटा नहीं होता? जयललिता ने कुछ वर्ष पूर्व अपने दत्तक पुत्र की शादी में लाखों रुपये की बिजली से जगमग रोशनी का जो जश्न मनाया था, उसकी राशि कहां से आई? हाल ही में उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री रहते मायावती ने सरकारी खर्च पर अपना जन्मदिन का शानदार समारोह आयोजित किया था। आशय यह है कि प्राथमिक शिक्षा जैसे महान बुनियादी कार्य को इक्कीसवीं सदी के नवीन माहौल में भी यदि हम सही दिशा में नहीं बढ़ा सके तो यह हमारी जड़तावादी निष्क्रियता और गैर-ईमानदार सोच का ही परिणाम कहा जायेगा। 28 नवम्बर, 2001 को जब कुछ राज्य सरकारों ने दलील दी कि दोपहर भोजन का खर्च वे नहीं उठा सकते तब पीठ ने उनसे कड़ाई से कहा कि वे कहीं और खर्च कम करें। इस सुझाव का औचित्य अभी समाप्त नहीं हुआ है।

साक्षरता की चुनौती भी हमें निरन्तर झकझोर रही है। वर्तमान में हमारे प्रधानमंत्री बराबर साक्षरता मिशन में सभी की भागीदारी का

आह्वान कर रहे हैं। पूरे देश को साक्षर बनाना समय की मांग तो है ही। यदि प्रथम पंचवर्षीय योजना के साक्षरता कार्यक्रम, तृतीय योजना के बाल सेविका प्रशिक्षण तथा 1958 में 'राष्ट्रीय शिक्षा परिषद' की विशेष कदम रखने की सिफारिश पर गंभीरता से अमल किया गया होता तो बालिका शिक्षा और नारी प्रगति के निराशाजनक पहलू दिखाई नहीं देते जो आज सामने खड़े हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी शुरू से साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा की आवाज तो उठाई गई लेकिन इन प्रयासों के अभाव में स्थानीय आबादी को कोई लाभ नहीं मिला। महिला साक्षरता की दर में जो क्षेत्रीय असमानताएं नजर आती हैं उसका मुख्य कारण विभिन्न राज्यों में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेशगत भिन्नताएं हैं। जिन राज्यों में नारी साक्षरता दर ऊंची रही है वहां राज्य सरकार व जनता ने ईमानदारी से प्रयास किये हैं। वहां बालिकाओं की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई तथा साक्षरता अभियान को एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में लिया गया। केरल और उत्तरपूर्वी राज्यों में नर-नारी में जो समानता सांस्कृतिक रूप से दिखाई देती है उससे महिला साक्षरता के प्रति रूढ़ियों को बल न मिल सका। यही कारण है कि वहां स्त्री पुरुष में उत्तर भारत की तरह भेदभाव नहीं है।

वैश्विक स्तर पर देखें तो दुनिया के गरीबतम देशों में शिक्षा और साक्षरता का प्रतिशत भारत से ज्यादा है। घाना, इंडोनेशिया, केन्या, म्यांमार, फिलीपीन्स, जिम्बावे व जांबिया जैसे देशों में शिक्षा का प्रतिशत 55 से ऊपर है। पड़ोसी देश श्री लंका जो साक्षरता में बहुत पिछड़ा था वहां आज पुरुष साक्षरता 95% तथा स्त्री साक्षरता 87% है। संसाधनों के लिहाज से अत्यन्त पिछड़े बांग्लादेश ने भी अपूर्व अक्षर यज्ञ के मार्फत समग्र देश में अलख जगा दिया है। सवाल केवल संसाधनों के कम और अधिक होने का नहीं है इस दृष्टि से तो भारत अपने दोनों पड़ोसियों से बहुत आगे है। हमारे यहां खास तौर से हिन्दी भाषी राज्यों में समाज, नौकरशाही तथा गैर-सरकारी संस्थाएं साक्षरता को अपनी प्राथमिकता नहीं मानते। यही वजह है कि आधा दर्जन राज्यों में साक्षरता का ग्राफ 52% से भी कम है। साक्षरता में दस साल तक अच्छा काम करने के कारण पुरस्कार पाने वाले राजस्थान में भी साक्षरता एवं बालिका शिक्षा की दशा शोचनीय बनी हुई है। हम साक्षरता और प्राथमिक शिक्षा की सपेक्षता का महत्त्व समझने में काफी हद तक विफल रह गये।

बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा का मुद्दा अधूरा ही रहेगा यदि हम दलित लड़कियों की शिक्षा की जानकारी नहीं करेंगे। यद्यपि दलित वर्ग में शिक्षा को बदलाव का प्रमुख कारण समझने की भावना विकसित हुई है लेकिन स्त्री शिक्षा के प्रति वहां भी रुझान बहुत कम है। वर्ष 1993 में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में

1000 दलित शहरी छात्रों की तुलना में 679 छात्राओं के नामांकन पाये गये जबकि इसी स्तर पर ग्रामीण दलित छात्राओं की संख्या 342 थी। 1999 की भारतीय मानव विकास रिपोर्ट के मुताबिक 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग में 541 दलित छात्राओं ने ही नामांकन कराया था तथा दलित छात्रों और सवर्ण छात्राओं के अनुपात में उनकी पढ़ाई छोड़ने और अनुपस्थित रहने की दर भी काफी अधिक थी। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ण और लिंग आधारित भेदभाव बहुत होता है और इसका भयंकर परिणाम दलित बालिका श्रमिकों की बड़ी तादाद की विद्यमानता के रूप में दिखाई दे जाता है। पिछड़े क्षेत्रों में स्थिति और भी बदतर है यद्यपि शहरी क्षेत्रों में यह थोड़ी बेहतर है। यह अत्यन्त निराशाजनक बात है कि आधुनिक वैज्ञानिक माहौल में भी शिक्षा की निरन्तरता के साथ शिक्षित सवर्ण लोगों की मानसिकता का संकीर्ण रूप दलितों और पिछड़े वर्गों के प्रति बदला नहीं है।

सर्व शिक्षा अभियान स्वयं में एक व्यापक विषय है इसमें निहित आशंकाओं और न्यूनताओं पर अलग से बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इस अभियान की आलोचना करते हुए विश्वविद्यालय तथा कॉलेज शिक्षक संगठनों की अखिल भारतीय फैडरेशन ने एक याचिका दायर की है। आशा की जाती है कि याचिका की सुनवाई के बाद न्यायालय के अनेक संकेतों और फैसलों से नई-नई बातों पर विचार करने की स्थितियां सामने आयेंगी। सामान्य रूप से सर्व शिक्षा अभियान इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसमें देश के हर लड़के-लड़की को काफी सुविधाजनक सहूलियतों के साथ शिक्षा देने का अवसर प्रदान किया गया है।

उल्लेखनीय है कि भारतीय लोकतंत्र में कोई भी सामाजिक सरकारी अभियान जन सहयोग के बिना फलीभूत नहीं हो सकता। हमें शिक्षा की व्यापकता के सवाल पर केरल से सबक लेने की जरूरत है। केरल में आज साक्षरता की दर यदि 90% से ऊपर है तो इसमें उस राज्य के स्त्री-पुरुषों के उदारतापूर्ण सहयोग की भूमिका का महत्त्व है। आजादी के पहले से ही केरल में साक्षरता का चलन था। बाद में पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों ने छोटे-छोटे ग्रुपों में पिछड़े और अपने समुदायों के घरों में जाकर परिवारों को शिक्षा की प्रेरणा देकर प्राथमिक शिक्षा का दायरा विकसित करने का पुनीत कार्य किया। निर्धन स्थिति वाले माता-पिता की हर संभव सरकारी एवं गैर-सरकारी तरीकों से सहयोग करते हुए उनकी संतानों को स्कूल में प्रवेश दिलवाया। संवेदनशीलता और सौमनस्य के साथ गरीबों तथा जरूरतमन्दों की समस्या को समझना और उसका समाधान करना जैसी दूरगामी नीति के कारण ही अधिकाधिक तादाद में अज्ञान का अंधेरा दूर होने लगा और ज्ञान के उजाले से केरल शैक्षिक जगत में उदाहरण बन गया। श्रीलंका में भी कुछ इसी तरह के प्रयास किये गये।

जनतंत्र में जन सहयोग और जन प्रतिबद्धता का महत्व हम शायद भूलते जा रहे हैं। हिन्दी भाषी राज्यों में यही देखने में आया है।

आजादी से पूर्व महाराष्ट्र की सावित्री बाई फुले जो स्वयं अनुसूचित वर्ग से थी और जिनको अपनी शिक्षा जारी रखते समय गाली-गलौज तथा ईंट-पत्थरों से अनेकों बार नवाजा गया था। लेकिन उन्होंने कठिन संघर्ष का सामना करते हुए महाराष्ट्र में खास तौर से पिछड़े क्षेत्रों की स्त्रियों और लड़कियों में शिक्षा का अलख जगाया। छात्रवृत्तियों और पाठ्य-सामग्री की निःशुल्क व्यवस्था की तथा अधिक उपस्थिति वाली छात्राओं को खाद्यान्न भी वितरित किया। उनके अमूल्य प्रयासों से विवेकशील स्त्री-पुरुषों का सहयोग भी मिला। 1892 के आसपास इस तरह के प्रयासों को साकार बनाना आसान नहीं था। आज भी अनेक इलाकों में महाराष्ट्र में पिछड़ी जातियों में शिक्षित स्त्रियों की तादाद अन्य कई राज्यों से बेहतर दशा में पाई जाती है। इससे यह सीख मिलती है कि यदि स्त्रियों के सुधारवादी कामों में स्त्रियाँ प्रमुख भूमिका निभाएं तो उसके परिणाम काफी बेहतर निकलते हैं।

अनिवार्य शिक्षा लागू करने की दिशा में बाधा आने पर अभिभावकों को दंडित करना अनुचित होगा। हमें उन कारणों को तलाशना होगा जिनके कारण माता-पिता लड़कियों को स्कूल नहीं भेज पाते। गरीबी के अलावा जातीय कुंठा, असुरक्षा का वातावरण, अध्यापन में अरोचकता और स्कूल का अस्वच्छ और गंदा होना आदि जैसे कारणों से भी खास तौर से अनपढ़ लोग स्कूल का महत्व नहीं समझ पाते। यहां केरलवासियों की उदारता और हार्दिकता के नुस्खे काम में लाने होंगे। साथ ही कुछ अन्य बातों पर भी विशेष ध्यान देना होगा।

- स्कूल के भवनों में पानी-शौचालय और शिक्षकों तथा छात्राओं के लिए सुविधाजनक स्थान, कुर्सी, मेज आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।

- सभी अध्यापक प्रशिक्षित संवेदनशील और मेहनती हों। बच्चों की मानसिकता (बौद्धिकता) को पहचानने वाले शिक्षकों को ही छात्र वर्ग आत्मीय मानने लगता है। अध्यापन शैली में रोचकता और संप्रेषणीयता का ध्यान विशेष रूप से रखा जाना चाहिए।

- पाठ्यक्रम सुरुचिपूर्ण, वैज्ञानिक तथा बहुआयामी ज्ञान को विकसित करने वाला तथा जनतांत्रिक सिद्धांतों की स्वीकार्यता से युक्त होना चाहिए। सम्प्रदायवाद, कट्टरतावाद तथा संस्कृति के नाम पर किसी धर्म विशेष को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति पाठ्यपुस्तकों में अंकित नहीं होनी चाहिए। आजकल इतिहास का पुनर्लेखन तथा पुस्तकों में व्यक्ति विशेषों से संबंधित लेखों को जोड़ने की प्रक्रिया

चल रही है, इसकी निन्दा की जानी चाहिए और मौलिकता तथा वस्तुनिष्ठता को स्थापित किया जाना चाहिए। हमें हर तरह से अपनी मेल मिलाप वाली बहुलवादी संस्कृति की मर्यादा को जीवित बनाये रखना चाहिए।

- प्रत्येक कक्षा में अध्यापक की मौजूदगी अनिवार्य हो और शिक्षक शून्य कमरे की भयावहता तथा एक अध्यापक सभी कक्षाओं की देखरेख करे जैसी शोचनीय स्थिति सर्वथा समाप्त होनी चाहिए।

आशा है इस तरह के माहौल में बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा को बेहतर बनाने में सफलता मिलेगी। ◆

शिक्षा-विमर्श

प्रिय पाठक,

अपना पत्र व्यवहार का पता बदलते ही हमें तुरंत सूचित करें और नया पता दर्ज करायें। पता अस्पष्ट अथवा सही नहीं होने पर अनेक बार पत्रिका वापस लौट आती है। हम चाहते हैं कि पत्रिका आपको नियमित मिलती रहे।

हमारा पता है -

शिक्षा विमर्श

दिगन्तर

टोडी रमजानीपुरा,

खोनागोरियान रोड,

जगतपुरा, जयपुर -25

इस संदर्भ में आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं।

हमारा ई मेल का पता है -

email-shikshavimarsh@yahoo.co.in

संपादक